ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Issue - 4 | October-December 2021 | RNI No. RAJHIN/2011/40531

SHODH SHREE
ज्ञानं भारः क्रियां विना
ISSN 2277-5587
RNI RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-41 October-December 2021

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-41 Issue-4 October-December 2021 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Shri Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-41 | Issue-4 | October-December 2021

1. **नई सदी के जनजातिमूलक हिंदी उपन्यास** 1-6
प्रो. संजय नाईनवाड, बार्शी (महाराष्ट्र)

2. **सामाजिक आन्दोलन लोकतन्त्र के दर्पण में** 7-11
डॉ. दिनेश गुप्ता, खाजूवाला (बीकानेर)

3. **गाँधी जी और पं. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन** 12-14
डॉ. संजीव कुमार लवानियां, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) एवं डॉ. ऋता दीक्षित, एटा (उत्तरप्रदेश)

4. **भारतीय लोकतंत्रः एक नई दिशा में गमन** 15-19
चन्द्रभान सिंह, जालौन (उत्तरप्रदेश)

5. **शुष्क क्षेत्र में स्थायी फसल उत्पादन के लिए जल प्रबंधन – एक भौगोलिक** 20-25
डॉ. गौरव कुमार जैन एवं नरसीराम, जोधपुर

6. **औपनिवेशिक काल में बीकानेर रियासत का सैन्य संगठन** 26-31
डॉ. रजनी मीणा, राजगढ़ (अलवर)

7. **समकालीन हिंदी कविताओं में जनवादी स्वर** 32-35
प्रो. अच्युत साधू शिंदे, पुणे (महाराष्ट्र)

8. **डॉ. भीमराव अम्बेडकर का मानवतावादी चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** 36-41
हेमाराम तिरदिया, भोपालगढ़

9. **नगरो का सुनियोजित विकास "जयपुर नगर पर संक्षिप्त प्रतिवेदन"** 42-46
डॉ. अशोक कुमार मीना, जयपुर

10. **मालवा की लोकसंस्कृति में – महानुभाव पंथ** 47-50
डाँ. मनीष कुमार दासौंधी, बडवानी (मध्यप्रदेश)

11. **कुरुक्षेत्र एक विवेचन** 51-54
डॉ. सन्तोष कुमार, फलोदी

12. **मानव संसाधन विकास : कुमाऊँ की ग्रामीण महिलाओं के विशेष संदर्भ में** 55-60
डॉ. सीता मेहता, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)

13. **क्षेत्रवाद : भारतीय लोक्तंत्र के संदर्भ में** 61-66
डॉ. राजेश कुमार रावत, जयपुर

14. **वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत के जनजातीय समाज पर प्रभाव** 67-70
डॉ. भारती दीक्षित, मेरठ (उत्तरप्रदेश)

15. **गांधी चिन्तन में राज्य एवं लोककल्याण** 71-76
डॉ. पंकज भारद्वाज, रायपुर (पाली)

नई सदी के जनजातिमूलक हिंदी उपन्यास

प्रो. संजय नाईनवाड
सहयोगी प्राध्यापक, एस.बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संविधान में 'आदिवासी' के लिए 'जनजाति' शब्द का प्रयोग हुआ है। आज जनजातीय जीवन को केंद्र में रखकर लिखे जा रहे उपन्यासों ने हिंदी साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी है। इनमें जनजातीय समाज-जीवन की संवेदनाओं को यथार्थ के व्यापक धरातल पर लिखा जाने लगा है। मौजूदा दौर में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जनजातीय जीवन पर गैर-आदिवासी और आदिवासी दोनों साहित्यकारों द्वारा लिखा जा रहा है। जहाँ तक उपन्यास लेखन का मुद्दा है तो उपन्यास लेखन में आदिवासी उपन्यासकारों की अपेक्षा गैर-आदिवासी उपन्यासकारों की भागीदारी अधिक है। आदिवासी साहित्य जगत में आदिवासी साहित्य को लेकर मुख्य तीन अवधारणाएँ चर्चा में हैं - आदिवासी विषय पर लिखा साहित्य आदिवासी साहित्य है, जन्मना आदिवासियों द्वारा स्वानुभूति के आधार पर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है और जिसमें 'आदिवासीयत' के तत्वों का निर्वाह हुआ है, वही आदिवासी साहित्य है। आज यह तीसरी अवधारणा आदिवासी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा रही है। नई सदी में लिखे जा रहे जनजातिमूलक हिंदी उपन्यासों में आदिवासी व गैर-आदिवासी, दोनों रचनाकारों ने इसी तीसरी अवधारणा 'आदिवासीयत' के तत्वों का ध्यान रखकर आदिवासी उपन्यास रचे हैं, जिसकी अनुभूति नई सदी में अब तक लिखे गए उपन्यासों को पढ़ने के उपरांत होती है।

संकेताक्षर : *जंगलसेना, बगावत का बिगूल, संथाल हुल, लगान, मार्शल लॉ, आपराधिक जनजाति अधिनियम, एन.जी.ओ. जरायम-पेशा, मिथक, सम्पसभा, धूणी-धाम, मालगुजारी, प्रदूषण, विकीरण, विस्थापन, लेमुरिया महाद्वीप, सिंगबोंगा, सोना लेकन दिसुम, इकिर बोंगा, भूमंडलीकरण, सेज, उलगुलान, खनिज, खदान।*

जनजातियों को केंद्र में रखकर लिखे जा रहे उपन्यासों ने अब हिंदी साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी है। आज जनजातीय समाज जीवन की व्यापक संवेदनाओं यथार्थ के धरातल पर लिखा जाने लगा है। इन उपन्यासों में आदिवासीयत के दर्शन होते हैं। डॉ. डी.एन. मजूमदार ने जनजाति को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''एक जनजाति परिवारों या परिवार समूहों का एक संकलन होती है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं, विवाह, व्यवसाय उद्योग के विषय में कुछ नियमों का पालन करते हैं तथा एक निश्चित तथा उपयोगी परस्पर आदान-प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।''[1] प्रस्तुत पत्र में 2000 से 2014 तक प्रकाशित जनजातिमूलक उपन्यासों पर प्रकाश डाला गया है।

राकेश कुमार सिंह ने 2003 में 'पठार पर कोहरा' उपन्यास झारखंड के जनजातीय जीवन पर लिखा है। उपन्यासकार ने शोषण, उत्पीड़न व अत्याचार की दलदल में धँसे संथाल व मुण्डा जनजातियों की दुर्दशा को उजागर किया है। आजादी के बाद झारखंड में जनजातीय इलाकों में शोषण की साहू, बाबू और बंदूक की नई संस्कृति का उदय हुआ था। उपन्यास का बेचू तिवारी, जंगल सेना, फॉरेस्ट अफसर इसी संस्कृति के प्रतीक हैं। ''जंगलसेना और बेचू तिवारी का तिरेसठ का आँकड़ा हर खेल में बेचू तिवारी का साथ देता.....वैसे तो क्षेत्र के वन-विभाग के सारे कर्मचारी, ब्लाक अफसर, थाना-पुलिस-सभी जानते हैं कि समस्त कारोबार ढँके तौर पर बाबा गऊँवॉ यानी बेचू तिवारी के ही है''[2] यह स्थितियाँ आज भी बदस्तूर विद्यमान हैं। आतंक, शोषण, दमनचक्र और हिंदू धर्म की उपेक्षा के शिकार आदिवासी

ईसाई मिशनरियों के झाँसे में आकर धर्म परिवर्तन कर लेते हैं। ''बनासकाँठा के लगभग सारे मुण्डा क्रिस्तान बन गये है। गले में क्रास पहिरने लगे हैं।''[3] उपन्यास में एक ओर शोषण, उत्पीड़न व अत्याचार के नये-नये दुश्चक्रों के जाल में फँसे जनजातीय मानस को जागृत करते हुए, उनमें अस्मिता व चेतना को जगानेवाले एक संवेदनशील, दुर्दम्य आत्मविश्वास और इच्छाशक्तिवाले नायक, अध्यापक संजीव सान्याल की संघर्षगाथा है। तो दूसरी ओर हताशा में घिरी आदिवासी युवती रंगेनी के आत्मसंघर्ष, अस्तित्व की रक्षा और नारीमुक्ति की कहानी है।

मधुकर सिंह द्वारा लिखा 'बाजत अनहद ढ़ोल' उपन्यास 2005 में प्रकाशित है। झारखंड के संथाल जनजाति की ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ किए गए संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखी यह महागाथा है। भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत का बिगुल सर्वप्रथम झारखंड में ही बजा था। इस बगावत के पुरोधा संथाल हुल के नायक सिद्धो, कान्हो, चाँद, भैरो थे। इनके नेतृत्व में संथाल परगना में व्यापक जनांदोलन चलाया गया। आदिवासियों में देशप्रेम, स्वाधीनता की चेतना, अपने जल-जंगल-जमीन के लिए मर मिटने का जज्बा इन नायकों ने जगाया। सिद्धो, कान्हो, चाँद, भैरो, वीरसिंह माझी के नेतृत्व में आदिवासी संगठित हुए। इन जननायकों के कारण ही ब्रिटिशों को देश से खदेड़ने की चेतना और हौसला बुलंद हुआ, ''हमारी धरती खाली कर अपने देश चले जाओ। पहाड, नदी, झरना, खेत सब कुछ हमारा हैं-पूरा संथाल परगना हमारा है। पहाड़ काटकर, जंगल साफ कर हमने खेत बनाए हैं। उन खेतों पर लगान-मजूरी तय करने का काम तुम्हारा नहीं है।''[4] संथालों ने तत्कालीन कंपनी सरकार की शासन व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था और न्याय व्यवस्था के विरुद्ध मोर्चाबंद होकर हथियार उठाये थे किंतु ब्रिटिश हुकूमत ने इसे विद्रोह करार दिया। आदिवासियों ने परंपरागत छापामारी युद्ध, तीर-धनुष्य, भालों से आधुनिक हथियारों से लैस आततायी अंग्रेजों का बड़े साहस से मुकाबला करते हुए वीरभूमि तक कब्जा जमाया इससे ब्रिटिश बौखलाये। छल और कपट का सहारा लेते हुए-''ब्रिटिश शासन फौजियों ने जुल्म का नंगा नाच शुरू कर दिया। हजारों संथाल जवान, बच्चे, औरतें और बूढ़े मार दिए गए संथाल बस्तियाँ वीरान कर दी गयी।''[5] अंग्रेजों ने खून की नदियाँ बहायी, बर्बरता को पराकाष्ठा पर पहुँचाया, कत्ल का सिलसिला चलाया। बूढ़ें, बच्चों, महिलाओं, जवानों पर मुकदमें चलाए कारागृहो में बंद किया। सिद्धो को पकडकर फॉसी दे दी गयी। फिर भी संथालियों की आजादी और अस्मिता की भावनाएँ कम नही हुई। अंततः सरकार ने पूरे संथाल परगना में 14 नवंबर 1855 में मार्शल लॉ लागू कर निर्ममता से संथाल विद्रोह को दबा दिया।

शरद सिंह का 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास 2005 में प्रकाशित है। बुंदेलखंड़ की बेड़ियाँ जनजाति उपन्यास के केंद्र में है। बेड़नियाँ जिस समाज से आती हैं, उस समाज का जीवन जीने का मुख्य साधन नाच-गाना है। उपन्यास में लेखिका ने बेड़ियाँ समुदाय की उत्पत्ति से लेकर उनके वर्तमान तक का विस्तृत लेखा-जोखा रखा है। स्त्री-विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में सदियों से दलित, उत्पीड़ित, शोषित एवं उपेक्षित स्त्रियों की जीवनदशाओं एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को बेबाक रूप में प्रस्तुत किया है। समाज में बेडियाँ औरतों की उपस्थिति तो है, किंतु इनके प्रति संवेदना यदा कदा ही नजर आती है। अधिकतर लोगों के लिए यह औरतें नाचने-गाने वाली बेड़ीनें मात्र हैं, उन्हे हर कोई भोग्या के रूप में भोग सकता है। उपन्यास की नचनारी ठाकुर के बच्चे की माँ बनने वाली है, वह जब ठाकूर से इसके बारे में बतियाती है तब ठाकुर उदासीन भाव से उसके हाथ में कुछ पैसे थमाते हुए कहता है, ''जब पैदा हो जाए तो सूचित करना.... जब आवश्यकता हो तो और खर्चा पानी मॉग लेना।''[6] ब्रिटिश सरकार ने आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत कई जनजातियों को जरायमपेशा करार दिया, जिनमें से एक बेड़ियाँ जनजाति भी है। आजादी के बाद भारतीय संविधान ने इस अधिनियम को हटा दिया किंतु कई जनजातियाँ आज भी उस कलंक को ढो रही हैं। समाज के पूर्वाग्रह ने उन्हें अपराधपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरित किया।

रामनाथ शिवेंद्र द्वारा लिखा 'तीसरा रास्ता' उपन्यास 2008 में प्रकाशित है। उपन्यास में रचनाकार ने विस्थापन, शोषण, उत्पीड़न व व्यवस्था के दमनचक्र में पीसती सोनपुर जनपद के आदिवासियों की नियति को उजागर किया है। आज गैर सरकारी संगठन कुकुरमुत्ते की भॉति ऊग आये हैं, उनकी कार्यप्रणाली व भूमिका पर उपन्यासकार सवालिया निशान उठाता है। वर्तमान में गैर सरकारी संगठन देश-विदेश से जनकल्याणकारी योजनाओं के लिए बेहिसाब धनराशि प्राप्त करते हैं, जिसका बहुत बड़ा हिस्सा इन संगठनों के कर्ताधर्ता अपनी ऐश-आराम की जिंदगी पर खर्च कर देते हैं। उपन्यास में 'मानवाधिकार जन समिति' नामक गैर

ISSN 2277-5587

सरकारी संगठन का कर्ताधर्ता और उसकी सहायक मधु निहलानी ऐसे ही शातिर और बदमाश हैं, जो एन.जी. ओ. के माध्यम से विकास का भ्रम पैदा कर रहे हैं। वास्तविक उनके हाथ में समाज को बदलने की ताकत व साधन दोनों हैं, लेकिन वे शोषक व भक्षक के रूप में ही कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यास के माध्यम से रचनाकार ने आदिवासियों की अपने जल, जंगल व जमीन के लिए, अपने मौलिक अधिकारों के लिए किए जा रहे संघर्ष को उजागर किया है। सरकार की नीति भी आदिवासियों के प्रति निष्क्रिय एवं उदासीन है। सरकार सोनपुर जनपद में 'मानवाधिकार जन समिति' सुधा के नेतृत्व में बांध की परियोजना बनाती है। जहाँ बांध निर्माण प्रस्तावित है, उस प्रस्तावित क्षेत्र में आदिवासी पीढ़ी-दर-पीढ़ी निवास करते आए है। वह इलाका आदिवासियों का ही है लेकिन, "सरकार ने मान लिया था कि जंगल में इन आदिवासियों के रहवास ही अवैधानिक हैं, इन्हे कोई विधिक अधिकार नहीं कि ये यहाँ रहवास करें।"[7]

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' 2008 में प्रकाशित जरायम-पेशा कंजर जनजाति पर लिखा उपन्यास है। लेखक में तथाकथित सभ्य समाज ने तिरस्कृत करार दिए कंजरों के जीवन के अंतरंग को परत-दर-परत खोलकर समाज के सामने रखा है। ब्रिटिश शासनकाल भारतीय जनजातियों के लिए कूर काल कहा जाता है। ब्रिटिशों ने अपराधी जनजाति अधिनियम 1871 में संशोधन कर 1924 में उसे कठोर से कठोर बनाया जिसका अंजाम आज भी जरायम-पेशा जनजातियाँ भूगत रही हैं, जिसमें से कंजर एक है। इस अधिनियम के कारण ही उनका जीना मुहाल हो चुका है। उपन्यास की कमला बुआ कहती है, "दरोगा जी एक बात कहुँ। इस मुलक में हम तो आज भी वैसे ही हैं, जैसे फिरंगियों के जमाने में थे। पहले फिरंगियों और उनके दलाल पिट्ठुओं ने हमारा जीना मुहाल कर रखा था और अब इन देसी फिरंगियों ने।"[8] जरायम-पेशा कंजर समाज में सबसे अधिक दुर्दशा उस स्त्री की होती है जो विवाह कर 'भाभी' बन जाती है। इसके विपरित सुखमय जीवन उसका है जो 'बुआ' बनकर देह-व्यापार करती हुई खिलावड़ी कहलाती है। कंजरों में देह-व्यापार को खुले आम स्वीकृति है। जो देह-व्यापार करती है वह घर की खरी मालकिन होती है। भाभियों को यहाँ कोई महत्व और स्थान नहीं है न उनका कोई भविष्य होता है न वर्तमान। जीवन-भर खिलावड़ी, ननंदों, भतीजियों यहाँ तक कि बेटियों की तिमारदारी में लगे रहो और भावी खिलावड़ियों को पैदा करना ही उनका कर्तव्य और जीवन की उपयोगिता माना जाता है। ऐसे समूचे जीवन को तथाकथित सभ्य समाज कलंकित, घृणित और निंदनीय मानता है। पर इसमें अपराध किसका है ? समूचे उपन्यास में सामाजिक अन्याय बोध, उससे उत्पन्न वेदना, विद्रोह और प्रतिक्रिया दिखती है, उसे रचनाकार ने उजागर किया है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' रणेंद्र द्वारा लिखा, 2009 में प्रकाशित उपन्यास है। झारखंड की असुर जनजाति उपन्यास के केंद्र में है। असुरों का अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान एवं अस्मिता के लिए चल रहा अनवरत दीर्घकालीन संघर्ष व सतत मिटते जाने की प्रक्रिया का दिल दहला देने वाला चित्रण इस उपन्यास में है। उपन्यास का रुमझूम असुर कहता है, "हजार साल में कितने इंद्रों, कितने पांडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किए, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोककथाओं और मिथकों मे हम जिंदा हैं।"[9] उपन्यासकार लिखता है, "बदहाल जिंदगी गुजारती, संस्कृति विहीन, भाषाविहीन, साहित्यविहीन, धर्मविहीन। शायद मुख्यधारा पूरा निगल जाने में ही विश्वास करती है.....छाती ठोंक-ठोंककर अपने को अत्यंत सहिष्णू और उदार कहने वाली हिंदुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी भी जगह नहीं छोडी थी। कोई साहित्य नहीं कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं-कोई संकेत मात्र भी नहीं"[10] उपन्यास में देवराज इंद्र से लेकर टाटा, शिंडाल्को, वेदांग जैसे ग्लोबल गाँव के देवताओं तक फैले शोषण और दमनचक्र को उजागर किया है। रणेंद्र ने सदियों से उपेक्षित, हाशिए का जीवन जीते असुर समुदाय का सुख-दुःख, व्यथा प्रस्तुत करते हुए असुरों के लोकजीवन के पक्ष को भी स्पर्श किया है।

हरिराम मीणा ने राजस्थान के भील सूरमाओं की शहादत पर 'धूणी तपे तीर' उपन्यास लिखा है, जो 2008 में प्रकाशित हुआ। दक्षिणी राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में गोविंद गुरू के नेतृत्व में भीलों ने अंग्रेजी एवं देशज सामंती शासकों विरुद्ध लंबी लड़ाई लड़ते हुए मातृभूमि को स्वाधीनता दिलाने हेतु प्राणों की आहुति दी। जिसमें डेढ़ हजार से अधिक आदिवासियों की शहादत हुई। गोविंद गुरू ने मानगढ़ आंचल में सम्प सभा गठित कर आदिवासियों में चेतना जगायी। गोविंद गुरू दक्षिणी राजस्थान के गाँव-गाँव सम्प

सभाओं के माध्यम से धूणी-धाम स्थापित कर देशज रियासतों के शासक व फिरंगियों के द्वारा किए जाने वाले अत्याचार, दमनचक्र, शोषण, उत्पीड़न से तंग आए अभाव, गरीबी, भुखमरी, महामारी के अघाये-सताये आदिवासियों को मुक्ति दिलाकर स्वराज्य के अकांक्षी थे। "गोविंद गुरू......भूरेटिया अर्थात फिरंगियों को अपना असली दुश्मन मानते थें चूँकि उन्हीं के कारण देसी राजाओं ने आदिवासी विरोधी नीतियाँ लागू की थीं......अंग्रेजों का सत्ता-केंद्र दिल्ली था.......गोविंद गुरू का अंतिम लक्ष्य दिल्ली की गद्दी था। अर्थात अंग्रेजी राज का खात्मा। उनका सपना था भविष्य में आदिवासी पंचायत राज करें। उनकी विचारधारा का केंद्रीय भाव आदिवासियों को कष्टों से मुक्ति दिलाना था।"[11] गोविंद गुरू का आंदोलन अपने चरम लक्ष्य की ओर बढ़ता देख राजस्थान, गुजरात की रियासतें व ब्रिटिश सरकार बौखला गयी। 1913 में कैप्टीन स्टोक्ले, कैप्टीन पीटरसन, मेजर वेली के नेतृत्व में भूरेटिया तथा देशी रियासती फौजी टुकड़ियों ने संयुक्त अभियान चलाकर मानगढ़ पर्वत पर हो रही आदिवासी पंचायत के जमावडे पर अचानक धावा बोल दिया। मानगढ़ पर्वत पर हुए बर्बरतापूर्ण नर-संहार में डेढ़ हजार से अधिक आदिवासियों की शहादत हुई। किंतु इतिहासकारों ने इस शहादत की ओर अनदेखा किया, यह खेदजनक है।

राकेश कुमार सिंह का 'हुल पहाडिया' आजादी के लिए प्राणों की आहुति देने वाले आदि विद्रोही वीर तिलका मांझी पर लिखा ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यास 2012 में प्रकाशित है। आजादी की पहली लडाई लडने वाले तथा क्रांति के प्रथम अग्रदूत तिलका ने ईस्ट इंडिया कंपनी की साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ नगाडा बजाकर शुरुआत की थी। परंतु इस महानायक को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया, जिसका वह हकदार था। राकेश कुमार सिंह ने शोध व तथ्यों के आधार पर तिलका की मुक्तिकामी चेतना उजागर की है। पहाडिया शासक जनजाति थी। इनके राज्य की स्थापनाओं के कई ऐतिहासिक साक्ष्यों का जिक्र उपन्यास में है। भले ही पहाडिया राज्यों की स्थापना का लिखित इतिहास नहीं है। पर "मुगल व ब्रिटिशकालीन इतिहास गवाहियाँ देते हैं कि पहाडिया राज्यों का बहिरागतों द्वारा विध्वंस किया था। हंडवा, गिद्धौर, लकड़ागढ, लक्ष्मीपुर, समरूगढ, खड़गपुर, महेशपुर, पाकुड, सनकारा...एक एक कर ये राज्य पहाडियाँ लोगों के हाथों से निकलते गए थे।"[12] पहाडियों को अपने पुरखों द्वारा स्थापित राज्यों पर दीकुओं का वर्चस्व स्वीकार न था। तिलका के नेतृत्व में "पहाडियों ने कंपनी की हडपनीति का विरोध किया.... पहाडियों का मानना था सीमित जरूरतों संग जीने वाले चिर स्वाधीन पहाडिया जब कृषिकर्म में विश्वास ही नहीं रखते थे तो फिर किसी भूमि की मालगुजारी उनसे कैसे वसूल सकती थी कोई कंपनी? तिलका ने हुल शंखनाद करके ब्रिटिश अधिकारियों पर हमले और लूटपाट शुरु की तो ब्रिटिशों ने तिलका को डकैत करार दिया। ब्रिटिशों ने जंगल कब्जे में लिए। उन्होंने नए-नए जमींदार जन्म दिए। इन्हें कंपनी की ओर से निजी सेनाएँ पालने की छूट दी। गाँवों में पुलिस थाने स्थापित किए। ब्रिटिशों ने सेना व पुलिस को आदेश ही दिए थे 'हिलमेन! शूट एट साईट'। तिलका इन स्थितियों से व्यतित हुए। उनका विचार था, हम जीएँ या मरें, कोई बात नहीं। मर गए तो अपने पुरखों के बीच गर्व के साथ जा बैठेंगे। जी, बच गए तो माथा ऊँचा करके जीएँगे पहाडिया....अब विजय या वीरगति। पर दुर्भाग्य तिलका को गिरफ्तार कर फाँसी पर लटकाया गया।"

महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' 2012 में प्रकाशित है। विस्थापन, प्रदूषण एवं विकीरण से जूझते जनजातीय समुदायों पर लिखा उपन्यास है। वर्तमान में झारखंड के सिंहभूम इलाके में जहाँ यूरेनियम की खदानें हैं, वहाँ रेडियोधर्मिता का कहर लगातार जारी है। इसी इलाके में अपने ढंग का बेहद अनूठा सारंड़ा का घना जंगल है, जो सात सौ पहाड़ों, उसके पठारों और मैदानी इलाकों में पसरा है। यह इलाका आदिम प्रकृति, ताजगी, कीमती खनिजों व साल वृक्षों के लिए मशहूर है। लेकिन कुदरत की यह सौगात आदिवासियों के लिए खतरा बन गयी है। खासतौर से आज़ादी के बाद तो सारंड़ा के जंगल का विनाश लगातार जारी है। इस बरबादी का सीधा संबंध सरकार की उपभोक्तावादी नीति से है, जहाँ अपने ही लोग पर्यावरणीय संसाधनों को नष्ट कर रहे हैं। लेखिका ने उपन्यास को झारखंड के सिंहभूम के आदिवासियों तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु जापान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा विश्व के विभिन्न खंडों में निवास करनेवाले आदिवासी समुदाय से भी जोड़ा है। परमाणु उर्जा के लिए जरूरी यूरेनियम प्राप्त करने के लिए आदिवासी इलाकों में यूरेनियम खदानें व परमाणु उर्जा संयंत्र स्थापित किए गए। इन खदानों, परमाणु उर्जा संयंत्रों और उसके कचरे से होनेवाला विकीरण गंभीर जानलेवा समस्या है। आज भारत में ही नहीं बल्कि पुरी दुनिया में ऐसी कई

यूरेनियम खदानें एवं परमाणु भट्टियाँ विकास के नाम पर स्थापित हुई हैं, कई स्थानों पर इसका काम भी चल रहा है किंतु इन भट्टियों से निकलनेवाला परमाणु कचरा बेहद गंभीर खतरा बन गया है। लेखिका यूरेनियम के विकीरण की भयानकता को बयान करते हुए लिखती है, ''परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगा वाट बिजली पैदा करने से करीब 27 किलोग्राम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने में एक लाख साल से भी ज्यादा लग जाते हैं।''[13]

रणेंद्र का 'गायब होता देश' उपन्यास झारखंड के आदिवासी मुंडा समुदाय के उत्पीडन, विस्थापन, संस्कृति विहीन एवं भूमिहीन हो जाने की त्रासदी चित्रित करता है। प्रस्तुत उपन्यास 2014 में प्रकाशित है। उपन्यास में लाखों साल पहले दक्षिणी-प्रशांत महासागर के मध्य लेमुरिया महाद्वीप पर लेमूरियन सभ्यता की नीव रखने वाली प्रजातियों में से एक मुंडा प्रजाति के वर्तमान में बेहद दयनीय दशा तक पहुँचने के विविध कारणों एवं घटनाओं का ब्योरा है। कथित सभ्य समाज भूमंडलीकरण और बाजारवाद के मौजूदा दौर में प्राकृतिक संसाधनों का असीम दोहन करते हुए भौतिक औद्योगिक विकास की धुन में मूलनिवासी जातियों एवं उनकी दुनिया को नष्ट करने की प्रक्रिया को अंजाम दे रहा है। विकास की अंधाधुंध दोहन प्रक्रिया में कथित सभ्य मानव ने अतिरिक्त समझदारी का परिचय देते हुए - आदिवासियों ने हजारों हजार सालों से सिंगबोंगा की व्यवस्था को बनाये रखा था, उसका विनाश करना शुरु किया। नतीजा आदिवासियों का सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा है। ''सरना-वनस्पती गायब हुआ, मरांग बुरू, बोंगा, पहाड देवता गायब हुए, गीत गाने वाली धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखरने वाली हीरों से भरी सारी नदियाँ जिसमें इकिर बोंगा-जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुंडाओं की बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसूम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।"[14] भूमंडलीकरण के दौर में अन्य एक नयी अवधारणा ने जन्म लिया है। विशेष आर्थिक क्षेत्र अर्थात सेज। कल तक जिस भूमि की सिंचाई के लिए बांध बनाकर हजारों आदिवासियों को उजाडा गया, उस दर्द के घाव अभी भरे ही थे, बांध के पानी से खेत सिंचित होना शुरू ही हुए थे कि उसी क्षेत्र को सेज बनाने के नीति। अभी-अभी आदिवासी किसान पानी से धान, आलू, गेहूं की खेती कर रहा था, उसकी स्थिति में थोडा बहुत सुधार हो रहा था, इसी बीच सरकार को सपना आ जाता है कि जनहित में सेज जरूरी है। ये कैसा सपना? जनहित वाले ये सपने सरकार के मंत्रियों, अधिकारियों एवं पूँजीपतियों को नोटों से भरे तोशक-गद्दे पर सोने से आते हैं। ऐसे कथित विशेष आर्थिक क्षेत्रों के खिलाफ उपन्यास की सोनामनी आंदोलन चला रही है, पर सरकार की नजर में ये हरकत राष्ट्रद्रोह है। वास्तव में यह राष्ट्रद्रोह नही है क्योंकि मुंडाओं का जल, जंगल एवं जमीन को लेकर संघर्ष का इतिहास देश के स्वतंत्रता आंदोलन में लगभग दो ढाई सौ साल पुराना है। 1765 में बंगाल की दीवानी अंग्रेजों को मिलने की घटना के बाद 1766-67 में संघर्ष शुरू हुआ था। जिसकी आग बंगाल के मेदीनापुर के जंगलमहाल से फैली थी। यह उलगुलान था अंग्रेजों की जल-जंगल-जमीन पर कब्जा करने की नीति तथा अतिरिक्त कराधान के खिलाफ। आज देश में विदेशी आक्रांताओं एवं अंग्रेजों की सत्ता नही है। किंतु देशज सत्ता भी मूलनिवासियों संग अंग्रेजों की तरह ही बरताव कर रही है। "आज भी हमारी जमीनें छीनी जा रही हैं। कल उन्हें बांध के लिए जमीन चाहिए थी। फिर सेज के लिए जमीन छीनी। अब रियल इस्टेट के लिए। अंग्रेजों के जमाने का भूमि जब्ती कानून अपने स्वार्थ में अभी तक लागू किए हुए हैं। हम क्या करें? चुपचाप ताकते रहें। हाथ पर हाथ धर के बैठे रहें। लेकिन हमारी परंपरा संघर्ष की, हमारे पूर्वज संघर्ष करने वाले। हमारा इतिहास, हमारा मिथक, हमारा दर्शन सब संघर्ष का....सो अब हम लडेंगे। सब लडेंगे। हमारे साथ प्रकृति, इतिहास, मिथक,-पूर्वज-पुरनिया सब के सब मिल कर लडेंगे। उलगुलान....हो उलगुलान।"[15]

राजीव रंजन प्रसाद लिखित उपन्यास 'आमचो बस्तर' 2014 में प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास बस्तर के अतीत व वर्तमान की त्रासदियों को केंद्र में रखकर लिखा है। 'आमचो बस्तर बस्तर' बस्तर के इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थनीति, भाषा, धर्म, कला, संस्कृति, संगीत, जीजिविषा, परंपराएँ, लोकजीवन आदि तमाम रूपों से न पाठ्क को परिचित कराता है बल्कि पाठक को संवेदनाओं के स्तर पर गहरे रूप से जोड भी देता है। उपन्यास पढने के दौरान पाठक बस्तर की कई समस्याओं से जुड जाता है। उपन्यास में आदिवासी इलाकों में कई सालों से निर्मित माओवाद एवं नक्सलवाद जैसी ज्वलंत समस्या ने किस तरह अपना जाल फैलाया है, इस पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

बस्तर एक से एक प्राकृतिक संसाधनों व खनिज संपदाओं से अटा पडा है। बस्तर में कारंडम, टिन, डाइमंड, बक्साईट, लाइमस्टोन, आयरन से लेकर यूरेनियम तक है किंतु इतना सब कुछ होने के बावजूद बस्तर कंगाल है। चूँकि ये सारी संपदाएँ बस्तर से निकल कर विकास के नाम पर अन्य स्थानों पर निवेश की जा रही हैं और बदले में बस्तर को क्या मिल रहा है? शोषण, उपेक्षा, गरीबी, बदहाली, प्रदूषण व बीमारियाँ। आज भी बस्तर के अधिकांश गाँवों में पक्की सडक की तो बात दूर कच्ची सडक तक नहीं पहुँच पायी है। कोई गाँव में बीमार पडता है और यदि उसे अस्पताल ले जाना हो तो मरीज को बाँस के सहारे खटिया को रस्सियों से बांधा जाता है जिसे दो व्यक्ति पालकी की तरह उठाकर ढोते हैं, यही बस्तर की एम्बुलेंस है और ये एम्बुलेंस दुर्गम पहाडियों, कच्ची पथरीली पगडंडी से जिस तिस तरह अस्पताल पहुँचती है। यदि मरीज जीवन की डोर लंबी रही तो बचता है, वरना कहना मुश्किल है। बस्तर के ये हालात हैं। ये वही बस्तर है जो देश विकास के लिए लौह आयस्क, कोयला, कोरंडम, लाइमस्टोन, बक्साईट, कोयला, यूरेनियम आदि को पहुँचाता है। पर यहाँ न सडकें हैं, न बिजली है, न पानी है, न अस्पतालों में ढंग की सुविधाएँ हैं, और न यहाँ के युवाओं को रोजगार। यहाँ लगी खदानों में बाहर के राज्यों से मजदूर बुलाए जाते हैं, अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं पर स्थानीय बाशिंदों को रोजगार नहीं मिल पाता। यहाँ के लोगों की मांग है कि बस्तर को शेष दुनिया से काट देने से बस्तर का विकास नहीं होगा। यहाँ परियोजनाएँ आनी चाहिए, कल-कारखाने लगने चाहिए। सरकारी नौकरी से केवल कुछ व्यक्तियों का जीवन सुधर सकता है परंतु यदि परियोजनाएँ यहाँ लग जाए तो इसके चलते सहायक व्यापार और रोजगार भी जन्म लेते हैं। एक बात सही है कि यहाँ अंधाधुंध औद्योगिकरण नहीं होना चाहिए परंतु कुछ परियाजनाएँ तो आनी चाहिए। बस्तर में जब कोई परियाजना शुरू होने की बात उठ्ती है तब विरोध का स्वर ठोस होने लगता है। उपन्यास का पात्र मरकाम कहता है, ''बस्तर में विकास और रोजगार की एक उम्मीद जगी नहीं कि हमारे मसीहा जहाँ-तहाँ से पैदा हो जाते हैं.....इसलिए तो नक्सलवादी पनप रहे हैं.. ...विकास होगा नहीं, रोजगार रहेगा नहीं तो क्या होगा।"[16]

देश आजाद हुए 74 वर्ष बीत चुके हैं। इसके बाद भी इस तरह की पीडा भरे सवाल भारतीय आज़ादी लिए चुनौती बन कर उभर आते हैं। यदि बस्तर स्वतंत्र भारत का हिस्सा है तो वहाँ विकास की धारा क्यों नहीं पहुँच रही है। क्या कारण हैं इसके? ऐसे कई सारे सवाल उपन्यास पढ्ते समय मन में निर्मित होते हैं।

संदर्भ गंथ सूची

1. *उमेश कुमार वर्मा, जनजातीय समाजशास्त्र, जानकी प्रकाशन, पटना सं. 2008, पृ.6*
2. *राकेश कुमार सिंह, 'पठार पर कोहरा', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 110003, सं. 2003 पृ.71*
3. *वहीं, पृ.67*
4. *मधुकर सिंह, 'बाजत अनहद ढ़ोल', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, संस्करण, 2005 पृ. 73*
5. *वहीं', पृ.113*
6. *शरद सिंह, 'पिछले पन्ने की औरतें', सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2007, पृ.27*
7. *रामनाथ शिवेंद्र, 'तीसरा रास्ता', पिल्ग्रीग्स पब्लिशिंग, वाराणसी, 221010, सं. 2008 पृ. 107*
8. *भगवानदास मोरवाल, 'रेत', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, सं. 2008, पृ.35*
9. *रणेंद्र, 'ग्लोबल गाँव के देवता', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 110003, पृ.43*
10. *वहीं, पृ.33*
11. *हरिराम मीणा, 'धूणी तपे तीर', साहित्य उपक्रम, हरियाणा, सं. 2008, पृ. 30*
12. *राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, 110003, सं. 2012, पृ. 24*
13. *महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.380*
14. *रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स, इंडिया, दिल्ली, सं. 2014, पृ.103*
15. *वहीं पृ. 243*
16. *प्रसाद राजीव रंजन, आमचो बस्तर, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 110032, सं. 2014 पृ. 109*